

स्टेट (एंटी करप्शन ब्रांच) गवर्नमेंट ऑफ एन.सी.टी. ऑफ दिल्ली एवं एक अन्य

बनाम

डॉ. आर. सी. आनंद और एक अन्य

अप्रैल 15,2004

[दोराईस्वामी राजू और अरिजीत पासायत, न्यायाधिपतिगण]

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988; धारा 19/अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान विनियम, 1999; अनुसूची-II/दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 ; धारा 482:

अनुबंध के नवीनीकरण के लिए एक कर्मचारी द्वारा आपूर्तिकर्ता से अवैध परितोष की मांग - बातचीत की टेप-रिकॉर्डिंग - शिकायत - भ्रष्टाचार निरोधक ब्यूरो ने जाल बिछाया, कर्मचारी को रंगे हाथों पकड़ा - उसे निलंबित किया गया- कानून और न्याय मंत्रालय और केंद्रीय सतर्कता आयोग द्वारा अनुशंसित मुकदमा चलाने की मंजूरी - मंजूरी देने से इनकार करते हुए संस्थान के अध्यक्ष ने शासी निकाय/प्राधिकरण द्वारा इसके अनुसमर्थन के अधीन निलंबन के आदेश को रद्द कर दिया-हालांकि, संबंधित प्राधिकरण ने राष्ट्रपति के आदेश की पुष्टि नहीं की - उच्च न्यायालय द्वारा अनुमोदित चुनौती यह मानते हुए कि प्राधिकरण राष्ट्रपति के निर्णय का स्थान नहीं ले सकता है -अपील पर, अभिनिर्धारित किया गया: उच्च न्यायालय इस गलत आधार पर आगे बढ़ा कि राष्ट्रपति द्वारा लिया गया निर्णय मंजूरी देने वाले प्राधिकरण की क्षमता में था, लेकिन विनियमों के तहत मंजूरी देने वाला प्राधिकरण शासी निकाय था - राष्ट्रपति की कोई भूमिका नहीं है - प्राधिकरण द्वारा राष्ट्रपति के आदेश से अलग होने के कारणों का उल्लेख करना आवश्यक नहीं है - चूंकि प्राधिकरण ने रिकॉर्ड पर सभी सामग्री और साक्ष्य पर विचार किया था, इसलिए उसके द्वारा पारित आदेश कानून की आवश्यकता

को पूरा करता है - इसलिए, उच्च न्यायालय का निर्णय टिकाऊ नहीं है और अलग रखा गया है - मामले के गुण-दोष पर कोई विचार व्यक्त नहीं किया गया - विचारण अदालत को कानून के अनुसार आगे बढ़ने के लिए निर्देश जारी किए गए।

अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान (संस्थान) को सामग्री की आपूर्ति करने वाले एक ठेकेदार ने प्रतिवादी नंबर 1 के खिलाफ शिकायत दर्ज की जिसमें आरोप लगाया गया कि वह अनुबंध के नवीनीकरण के लिए अवैध संतुष्टि की मांग कर रहा था। इस संबंध में, शिकायतकर्ता ने अपने और प्रतिवादी नंबर 1 के बीच की बातचीत को टेप-रिकॉर्ड किया था और भ्रष्टाचार रोधी शाखा से संपर्क किया था। इसने जाल बिछाया और प्रतिवादी नंबर 1/कर्मचारी को रंगे हाथों पकड़ लिया और उसे निलंबित कर दिया गया। इस बीच, अपीलार्थी ने दोषी कर्मचारी पर मुकदमा चलाने के लिए मंजूरी मांगी। बदले में संस्थान ने कानून और न्याय मंत्रालय, भारत सरकार और केंद्रीय सतर्कता आयोग से कुछ स्पष्टीकरण मांगे। उन्होंने कर्मचारी पर मुकदमा चलाने की मंजूरी नहीं दी। संस्थान के अध्यक्ष ने शासी निकाय द्वारा अनुसमर्थन के अधीन निलंबन के आदेश को रद्द करने का आदेश पारित किया। हालांकि शासी निकाय ने मंजूरी दे दी और प्रतिवादी नंबर 1 को निलंबित कर दिया। व्यथित होकर उसने एक रिट याचिका दायर की और उच्च न्यायालय ने आदेश को रद्द कर दिया। इसलिए, वर्तमान अपील।

अपीलार्थी द्वारा यह तर्क दिया गया था कि चूंकि शासी निकाय प्रतिवादी नंबर 1 के संबंध में नियुक्ति प्राधिकारी के साथ साथ अनुशासनात्मक प्राधिकारी भी था, केवल उसके पास उस पर मुकदमा चलाने की मंजूरी देने का अधिकार है, और चूंकि संस्थान के अध्यक्ष की इसमें कोई भूमिका नहीं है, राष्ट्रपति की राय से अलग होने के लिये शासी निकाय द्वारा कारणों को दर्ज करना आवश्यक नहीं था।

प्रतिवादी ने कहा कि शासी निकाय द्वारा राष्ट्रपति के विचार को नजरअंदाज नहीं किया जाना चाहिये था, और यह कि शासी निकाय के लिये यह अनिवार्य था कि वह कर्मचारी पर मुकदमा चलाने की मंजूरी देते समय अपना दिमाग लगाये।

न्यायालय ने अपील को आंशिक रूप से स्वीकार करते हुये, अभिनिधारित किया

1.1. उच्च न्यायालय इस आधार पर आगे बढ़ा कि मंजूरी देने वाले प्राधिकरण को अपने स्वयं के स्वतंत्र दिमाग को लगाना होगा, और इसे राष्ट्रपति द्वारा लागू किया गया था और उन्होंने शासी निकाय द्वारा अनुसमर्थन की मांग की थी। यह दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से गलत था क्योंकि मंजूरी देने वाला प्राधिकारी शासी निकाय था, न कि राष्ट्रपति । जब मंजूरी देने के लिये सक्षम प्राधिकारी वैधानिक विनियमों के तहत शासी निकाय है और वह निकाय निर्णय लेता है तो राष्ट्रपतिद्वारा व्यक्त किये गये विचार से भिन्न होने के लिये कारणों को दर्जकरने की कोई आवश्यकता नहीं थी, जिनकी कानूनी रूप से कोई भूमिका नहीं थी। वैधानिक विनियमों द्वारा अपने स्वयं के क्षेत्रों, विषयों और विषयों को विशिष्ट रूप से निर्धारित करने वाली शक्तियों के आवंटन को किसी भी धारणा या आधारहीन अनुमान पर वैध रूप से नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। विनियमों के तहत निर्धारित प्राधिकरण द्वारा स्वयं शक्ति के स्वतंत्र प्रयोग पर कोई प्रतिबंध लगाने का कानून या निर्माण के किसी भी सिद्धांत में कोई औचित्य नहीं है। राष्ट्रपति अपने विचार व्यक्त करके या अनुसमर्थन के अधीन एक अनंतिम आदेश पारित करके शासी निकाय की स्वतंत्रता में बाधा या रोक नहीं लगा सकते हैं, जिसमें वैधानिक विनियमन के तहत, उसके पास बिल्कुल भी नहीं था। इसमें किसी भी अनुसमर्थन को कोई सवाल ही नहीं था, जैसा कि उच्च न्यायालय ने गलत तरीके से मान लिया था। [167 - ए-बी-सी-डी-ई-एफ-जी]

1.2 . मंजूरी की वैधता मंजूरी देने वाले प्राधिकारी के समक्ष रखी गई सामग्री और इस तथ्य पर निर्भर करेगी कि टेपरिकॉर्ड की प्रतिलेख सहित सभी प्रासंगिक तथ्यो, सामग्री और सबूतों पर मंजूरी देने वाले प्राधिकारी द्वारा विचार किया गया है। विचार का अर्थ है मन का प्रयोग। मंजूरी के आदेश में प्रत्यक्ष रूप से यह खुलासा होना चाहिए कि मंजूरी देने वाले प्राधिकरण ने उसके सामने रखी साक्ष्य और अन्य सामग्री पर विचार किया था। इस तथ्य को न्यायालय के समक्ष प्रासंगिक फाइलों को रखकर बाहरी साक्ष्य द्वारा भी स्थापित किया जा सकता है ताकि यह दिखाया जा सके कि सभी प्रासंगिक तथ्यों पर मंजूरी देने वाले प्राधिकारी द्वारा विचार किया गया था। उच्च न्यायालय के समक्ष वर्तमान अपीलार्थी के जवाबी हलफनामे ने स्पष्ट रूप से संकेत दिया कि निर्णय पर पहुंचने से पहले अनुमोदन प्राधिकारी शासी निकाय द्वारा प्रासंगिक पहलुओं पर ध्यान दिया गया था। इस प्रकार शासी निकाय द्वारा पारित आदेश को किसी भी तरह से कानून की आवश्यकताओं को पूरा करने में कमी नहीं कहा जा सकता है। इसलिए, उच्च न्यायालय का फैसला बचाव योग्य नहीं है और इसे अपास्त किया जाता है। यह स्पष्ट किया जाता है कि मामले के गुण-दोष पर कोई राय व्यक्त नहीं की गई है। विशेष न्यायाधीश के समक्ष लंबित मामले पर कानून के अनुसार कार्रवाई की जाएगी। [168 - सी-डी-ई-एफ]

जसवंत सिंह बनाम पंजाब राज्य, एआईआर (1958) एससी 124; बिहार राज्य बनाम पी. पी. शर्मा, [1992] पूरक 1 एस. सी. सी. 222 और मनसुखलाल विठ्ठलदास चौहान बनाम गुजरात राज्य, [1997] 7 एस. सी. सी. 622, पर भरोसा व्यक्त किया गया।

कल्पनाथ राय बनाम राज्य, (सी. बी. आई. के माध्यम से), [1997] 8 एस. सी. सी. 732 -संदर्भित किया गया ।

आपराधिक अपीलीय क्षेत्राधिकार : आपराधिक अपील संख्या 478/2004

(आपराधिक रिट याचिका संख्या 260/2000 में दिल्ली उच्च न्यायालय के निर्णय और आदेश दिनांक 27.5.2003 से)

राजीव शर्मा और श्रीमती अनिल कटियार, अपीलार्थियों के लिये।

के. राममूर्ति, श्री राम जे. थलपति, जी. डी. गुप्ता, श्रीमती शोभा नागराजन, सुधीर नंदराजोग, मुकुल गुप्ता, इकराम अली और अंकुर जैन, प्रतिवादी के लिये ।

न्यायालय का निर्णय अरिजीत पसायत, न्यायाधिपति द्वारा दिया गया था। अनुमति प्रदान की गई।

आक्षेपित निर्णय में, दिल्ली उच्च न्यायालय की एक खंड पीठ ने अभिनिर्धारित किया कि प्रतिवादी संख्या- 1 /कर्मचारी के खिलाफ आगे बढ़ने के लिये अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान (संक्षेप में 'एम्स') के शासी निकाय द्वारा दी गई मंजूरी कानूनी रूप से टिकाउ नहीं थी। तदनुसार उक्त मंजूरी के अनुसार कार्यवाही को रद्द कर दिया गया। उच्च न्यायालय का विचार था कि जब राष्ट्रपति जो शासी निकाय के अध्यक्ष हैं, ने सुझाव दिया कि मंजूरी नहीं दी जानी चाहिये, तो मंजूरी देने का निर्देश देने वाला आदेश पारित करना शासी निकाय के लिए खुला नहीं था। राष्ट्रपति ने इस मामले को शासी निकाय के समक्ष रखने का निर्देश दिया था, यह उत्तरार्ध का दायित्व था कि वह केवल उस प्रश्न की जांच करे और यदि कोई विपरीत दृष्टिकोण अपनाया जाता है तो वह दिमाग का उपयोग दिखाते हुये एक तर्कसंगत आदेश पारित करने के अधीन था। चूंकि ऐसा नहीं किया गया, शासी निकाय का आदेश असुरक्षित था और रद्द किए जाने के योग्य था। इसके अलावा निलंबन का आदेश, जो पारित किया गया था और जारी रखा गया था, इस आधार पर रद्द कर दिया गया कि इसे जारी रखने की आवश्यकता की समीक्षा किए बिना लंबे समय तक जारी रखा गया था।

चूंकि महत्वपूर्ण सवाल यह है कि क्या शासी निकाय के निर्णय में कोई खामी है, तथ्यात्मक पृष्ठभूमि का एक संक्षिप्त संदर्भ पर्याप्त होगा।

8.5.1998 को प्रतिवादी संख्या 1 के विरुद्ध एम्स को सामग्री की आपूर्ति करने वाले सगीर अहमद खान द्वारा लगाये गये आरोपों के आधार पर शिकायत दर्ज की गई थी। शिकायत में यह आरोप लगाया कि प्रतिवादी संख्या 1 ने रद्द करने के आदेश की समीक्षा करने और अनुबंध के नवीनीकरण द्वारा आगे की आपूर्ति करने के आदेश देने के लिए अवैध परितोष की मांग की थी। शिकायतकर्ता ने टैपों के कैसेट पेश किए जिनमें उसके और प्रतिवादी संख्या 1 के बीच रिकॉर्ड की गई बातचीत थी। इसकी प्रतिलिपि तैयार की गई और रिकॉर्ड पर रखी गई। 20.7.1998 को शिकायतकर्ता ने प्रतिवादी संख्या 1 के साथ समय और धन की राशि तय करने के बाद भ्रष्टाचार निरोधक शाखा (संक्षेप में 'एसीबी') से संपर्क किया। शिकायतकर्ता ने ए. सी. बी. के एक अधिकारी के सामने रुपये 10 हजार के मुद्रा नोट प्रस्तुत किये। जाँच अधिकारी ने कई फर्द तैयार की, नोटों की संख्या दर्ज की और नोटों पर फेनॉल्फथैलिन पाउडर लगाया और शिकायतकर्ता और पंच गवाहों को अपनाई जाने वाली प्रक्रिया के बारे में बताया। जाल बिछाने के लिये अतिरिक्त सबूत इकट्ठा करनेकेलिय एक रिमोट टेप रिकॉर्डिंग सिस्टम का इस्तेमाल किया गया था। रिकॉर्ड की गई बातचीत के आधार पर और प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा रुपये स्वीकार करने के बाद, वसूली की गई और साडियम कार्बोनेट के रंगहीन घोल में फेनॉल्फथैलिन की उपस्थिति का संकेत देने वाले सकारात्मक परीक्षण नोट किये गये।

हाथ धोने और पैंट की जेब धोने के संबंध में विधि विज्ञान प्रयोगशाला से सकारात्मक रिपोर्ट भी प्राप्त हुई। हालाँकि इसी तरह की प्रक्रिया किसी अन्य व्यक्ति के

लिए थी, लेकिन स्थिति के अनुसार इसे अमल में नहीं लाया जा सका क्योंकि एम्स में स्थिति हिंसक हो गई थी।

दिनांक 29.7.1998 के एक आदेश द्वारा प्रतिवादी संख्या 1 को 20.7.1998 से एम्स द्वारा निलंबित कर दिया गया था। अपीलार्थी नं. 1 ने प्रतिवादी नं. 1 पर मुकदमा चलाने के लिए एम्स से मंजूरी का अनुरोध किया। एम्स ने कानून और न्याय मंत्रालय और केंद्रीय सतर्कता आयोग (संक्षेप में 'सीवीसी') से कुछ स्पष्टीकरण मांगा। उन्होंने मुकदमा चलाने के लिए मंजूरी देने की सिफारिश नहीं की। एम्स के अध्यक्ष ने 22.3.2000 को एक आदेश पारित कर निलंबन के आदेश को रद्द कर दिया, और शासी निकाय द्वारा अनुसमर्थन के अधीन मुकदमा चलाने की मंजूरी देने से इनकार कर दिया।

3.4.2000 को शासी निकाय ने राष्ट्रपति के 22.3.2000 के आदेश को निरस्त करते हुए एक आदेश पारित किया और परिणामस्वरूप प्रतिवादी नंबर 1 को निलंबित कर दिया गया ।

17.4.2000 को प्रतिवादी नं. 1 ने दिनांक 3.4.2000 के आदेश को निरस्त करने के लिये संविधान, 1950 (संक्षेप में संविधान) के अनुच्छेद 226 सपठित दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (संक्षेप में 'संहिता') की धारा 482 के अंतर्गत एक आपराधिक रिट याचिका दायर आदेश दिनांक 3.4.2000 को रद्द करने के लिये और अन्य राहतों के लिये भी, प्रस्तुत की। प्रतिवादी नं. 1 का रुख यह था कि कानून और न्याय मंत्रालय की राय एम्स के शासी निकाय पर बाध्यकारी है। एक बार एम्स के अध्यक्ष ने अपनी शक्ति का प्रयोग कर लिया, तो शासी निकाय द्वारा उस पर फिर से विचार नहीं किया जा सकता था और मंजूरी देते समय शासी निकाय की ओर से विवेक का प्रयोग नहीं किया गया था। चूंकि टेप रिकॉर्ड की गई बातचीत या एसीबी की रिपोर्ट की प्रतिलेख

शासी निकाय के समक्ष प्रस्तुत नहीं की गई थी, इसलिये निलंबन जारी रखना और मंजूरी देना खराब था। दिल्ली पुलिस के पास रिट याचिकाकर्ता के खिलाफ मामला दर्ज करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था क्योंकि वह एक केंद्र सरकार का कर्मचारी था और सीवीसी और कानून और न्याय मंत्रालय की राय के अनुसार मंजूरी केंद्रीय जांच ब्यूरो (संक्षेप में 'सी. बी. आई.')

वर्तमान अपीलार्थियों ने प्रतिवाद हलफनामे द्वारा जवाब दाखिल किया, यह रूख अपनाते हुये कि मंजूरी उचित विचार के बाद दी गई थी और मंजूरी को उचित ठहराने के लिय पर्याप्त सबूत थे। चूंकि 28.4.2000 को विशेष न्यायाधीश तीस हजारी, दिल्ली के न्यायालय में आरोप पत्र भी दाखिल किया गया था और संज्ञान लिया गया था, इसलिये रिट याचिकाकर्ता किसी भी राहत का हकदार नहीं था। यह भी बताया गया कि गृह विभाग मंत्रालय, एनसीटी सरकार द्वारा जारी अधिसूचना को देखते हुए ए. सी. बी. का अधिकार क्षेत्र है। उच्च न्यायालय द्वारा रिट याचिका को मुख्य रूप से इस आधार पर अनुमति दी गई कि शासी निकाय एम्स के अध्यक्ष के निर्णय का स्थान नहीं ले सकता है और मंजूरी देने के लिए कोई सामग्री नहीं थी क्योंकि यह आकलन करने के उद्देश्य से कि क्या यह मंजूरी देने के लिए एक उपयुक्त मामला था, शासी निकाय के समक्ष रिकॉर्ड प्रस्तुत नहीं किए गए थे।

अपील के समर्थन में, अपीलार्थी के विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया कि उच्च न्यायालय का दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से गलत है। भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 (संक्षेप में 'अधिनियम') की धारा 19 संबंधित अधिकारियों को हटाने के लिए सक्षम अधिकारियों को संदर्भित करती है। वर्तमान मामला धारा 19 की उपधारा (1) के खंड (सी) के अंतर्गत आता है। अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान अधिनियम, 1956 (संक्षेप में 'अधिनियम'), की धारा 29 की उपधारा(1) के तहत जारी अधिसूचना दिनांक

25/2/1999 द्वारा (संक्षेप में 'अधिनियम'), विनियमों को लागू किया गया और विनियमों को 'अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान विनियम, 1999' (संक्षेप में 'विनियम') कहा जाता है। अनुसूची II में, संस्थान में विभिन्न पदों के लिए अनुशासनात्मक और अपीलीय प्राधिकरणों की नियुक्ति से संबंधित, यह स्पष्ट रूप से निर्धारित किया गया है कि "निदेशक" के अलावा समूह "ए" पदों के लिए, नियुक्ति प्राधिकरण शासी निकाय है, और विभिन्न दंडों के संबंध में अनुशासनात्मक प्राधिकरण शासी निकाय है, सिवाय (i) से (iv) के दंड के संबंध में जिसके लिए अकेले राष्ट्रपति संबंधित प्राधिकरण है। उपर की स्थिति होने के कारण, जहाँ तक प्रत्यर्था संख्या 1 का संबंध है, यह केवल शासी निकाय है जिसे मंजूरी के प्रश्न पर निर्णय लेने का अधिकार था। उच्च न्यायालय इस तरह आगे बढ़ा जैसे कि निर्णय राष्ट्रपति का था और इसे शासी निकाय द्वारा अनुमोदित किया जाना था। किसी भी अनुसमर्थन का कोई सवाल ही नहीं था क्योंकि पूर्ण शक्तियां केवल शासी निकाय के पास निहित थीं और राष्ट्रपति की इसमें कोई भूमिका नहीं थी। दंड और अनुशासनात्मक अधिकारियों से संबंधित केंद्रीय सिविल सेवा वर्गीकरण नियंत्रण और अपील नियमों (संक्षेप में 'सी. सी. ए. नियम') के संदर्भ में, विशेष रूप से भाग 5 में यह बताया गया था कि बड़ा जुर्माना प्रतिवादी नं. 1 पर लगाया जाना था। इसलिए, यह केवल शासी निकाय था जिसके पास मंजूरी देने का अधिकार क्षेत्र था। राष्ट्रपति के दृष्टिकोण से हटने के लिए किसी भी कारण को दर्ज करने का कोई सवाल ही नहीं था, क्योंकि यह कानून की आवश्यकता नहीं है। अनुसमर्थन की अवधारणा को उच्च न्यायालय द्वारा गलत तरीके से पेश किया गया है।

जवाब में, विक्षन वरिष्ठ वकील श्री के.राममूर्ति ने प्रस्तुत किया कि यद्यपि शासी निकाय के पास मंजूरी देने का अधिकार क्षेत्र था, लेकिन राष्ट्रपति के दृष्टिकोण को हल्के में नहीं लिया जाना चाहिए था और जैसा कि इस न्यायालय ने मनसुखलाल

विट्ठलदास चौहान बनाम गुजरात राज्य [1997] 7 एस. सी. सी. 622, में इस न्यायालय ने नोट किया था, मंजूरी का अनुदान एक खाली औपचारिकता नहीं हो सकती है, और एक मस्तिष्क का प्रयोग अनिवार्य था।

हम उच्च न्यायालय के फैसले से पाते हैं कि यह इस आधार पर आगे बढ़ा कि मंजूरी देने वाले प्राधिकारी को अपना स्वतंत्र दिमाग लगाना है, और इसे राष्ट्रपति द्वारा लागू किया गया था और उन्होंने शासी निकाय द्वारा अनुसमर्थन की मांग की थी। यह दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से गलत है। मंजूरी देने वाला निकाय राष्ट्रपति नहीं था और यह शासी निकाय था। इस स्थिति को प्रतिवादी संख्या 1 के विद्वान वकील द्वारा उचित रूप से स्वीकार किया जाता है और वैधानिक विनियमों की अनुसूची II में निहित विशिष्ट प्रावधानों के आधार पर विवादित नहीं किया जा सकता है। लेकिन उनके अनुसार चूंकि राष्ट्रपति ने अपने विचार व्यक्त किए थे, इसलिए अलग दृष्टिकोण रखने के लिए कारणों का संकेत दिया जाना चाहिए था। इस तरह की दलीलें स्पष्ट रूप से बिना किसी आधार के हैं। जब मंजूरी देने के लिए सक्षम प्राधिकरण वैधानिक विनियमों के तहत शासी निकाय होता है और वह निकाय, जैसा कि इस मामले में निर्णय लेता है, तो राष्ट्रपति द्वारा व्यक्त किए गए विचार से अलग होने के कारणों को दर्ज करने की कोई आवश्यकता नहीं थी, जिनकी कानूनी रूप से कोई भूमिका नहीं थी। वैधानिक विनियमों द्वारा स्पष्ट रूप से अपने क्षेत्रों, विषयों और विषयों को विशिष्ट रूप से निर्धारित करने वाली शक्तियों के आवंटन को किसी भी धारण या आधारहीन अनुमान पर वैध रूप से नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। जब तक राष्ट्रपति की विशेष रूप से निर्धारित और शासी निकाय को आवंटित मामलों में कोई व्यक्तिगत भूमिका नहीं थी और शासी निकाय का निर्णय सामूहिक होना चाहिए क्योंकि किसी भी निकाय का निर्णय सामूहिक होना चाहिए, तब तक न तो राष्ट्रपति यह निर्धारित कर सकता था कि शासी निकाय को अपनी शक्तियों का प्रयोग क्या और कैसे करना है और न ही शासी

निकाय किसी भी तरह से राष्ट्रपति द्वारा व्यक्त किए गए दृष्टिकोण से निपटने और अलग होने के कारण देने के लिए बाध्य है, जैसा कि ऊपर देखा गया है कि वह स्वयं वैधानिक विनियमों के आलोक में ऐसा नहीं कर सकता था। विनियमों के तहत निर्धारित प्राधिकरण द्वारा अपने दम पर शक्ति के स्वतंत्र प्रयोग पर इस तरह के किसी भी प्रतिबंध को लागू करने का कानून या निर्माण के किसी भी सिद्धांत में कोई औचित्य नहीं है। राष्ट्रपति अपने विचार व्यक्त करके या अनुसमर्थन के अधीन एक अनंतिम आदेश पारित करके शासी निकाय की स्वतंत्रता में बाधा या रोक नहीं लगा सकते हैं, जिसमें वैधानिक नियमों के तहत, उनके पास कुछ भी नहीं था।

अनुसमर्थन क्रिया "अनुमोदन" की संज्ञा है। इसका अर्थ है अनुसमर्थन का कार्य, पुष्टि, और मंजूरी। अभिव्यक्ति "अनुसमर्थन" का अर्थ है औपचारिक रूप से अनुमोदन और स्वीकार करना है। इसका मतलब सहमति, अनुमोदन या औपचारिक मंजूरी व्यक्त करके अनुरूप होना है। अनुमोदन का अर्थ है अनुकूल राय रखना या व्यक्त करना, को संतोषजनक रूप में स्वीकार करना। वर्तमान मामले में, किसी भी अनुसमर्थन का कोई सवाल ही नहीं था, जैसा कि उच्च न्यायालय ने गलत तरीके से मान लिया था।

उच्च न्यायालय के समक्ष वर्तमान अपीलार्थी का जवाबी शपथ-पत्र ने स्पष्ट रूप से संकेत दिया कि शासी निकाय द्वारा अपने निर्णय पर पहुंचने से पहले प्रासंगिक पहलुओं को नोट किया गया था। ऐसा प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय इस आधार पर आगे बढ़ा है कि चूंकि राष्ट्रपति के दृष्टिकोण से हटकर अपनी स्वतंत्र राय बनाने के लिये मूल सामग्री, या साक्ष्य यानी कथित टेप बातचीत, पर शासी निकाय द्वारा ध्यान नहीं दिया गया था, इसलिये मंजूरी कानून के विपरीत थी। कल्पनाथ राय बनाम राज्य, (सी. बी. आई. के माध्यम से), [1997] 8 एस. सी. सी. 732, में इस न्यायालय द्वारा यह स्पष्ट रूप से कहा गया था कि मंजूरी देने वाले प्राधिकारी को विशेषज्ञों की रिपोर्ट

की प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं है। मंजूरी देने वाले प्राधिकारी को केवल यह देखना है कि शिकायत में प्रकट किए गए तथ्य प्रथम दृष्टया किसी अपराध के होने का खुलासा करते हैं या नहीं। टेपों आदि का वास्तविक उत्पादन, परीक्षण के दौरान सबूत के लिए मामले हैं और जरूरी नहीं कि इस स्तर पर किया जाए। यह सच है जैसा कि प्रतिवादी नं.1 के लिए विद्वान वकील द्वारा तर्क दिया गया था, प्रदान करना खाली औपचारिकता नहीं है।

अतः मंजूरी की वैधता मंजूरी देने वाले प्राधिकारी के समक्ष रखी गई सामग्री और इस तथ्य पर निर्भर करेगी कि टेप रिकॉर्ड की प्रतिलेख सहित सभी प्रासंगिक तथ्यों, सामग्री और सबूतों पर मंजूरी देने वाले प्राधिकारी द्वारा विचार किया गया है। विचार का अर्थ है मस्तिष्क का अनुप्रयोग। मंजूरी के आदेश में प्रत्यक्ष रूप से यह खुलासा होना चाहिए कि मंजूरी देने वाले प्राधिकरण ने उसके सामने रखे गए साक्ष्य और अन्य सामग्री पर विचार किया था। इस तथ्य को न्यायालय के समक्ष संबंधित फाइलों को रखकर बाहरी साक्ष्य द्वारा भी स्थापित किया जा सकता है ताकि यह दिखाया जा सके कि सभी प्रासंगिक तथ्यों पर मंजूरी देने वाले प्राधिकारी द्वारा विचार किया गया था। [जसवंत सिंह बनाम पंजाब राज्य, ए. आई. आर. (1958) एस. सी. 124 और बिहार राज्य बनाम पी. पी. शर्मा, [1992] पूरक। 1 एससीसी 222 - देखें]

मनुसुखलाल के मामले (उपरोक्त) में स्थिति को दोहराया गया था। शासी निकाय द्वारा पारित आदेश दिनांक 3.4.2000 को कानून की आवश्यकताओं को पूरा करने में किसी भी तरह से कमी नहीं कहा जा सकता है। प्रतिवादी संख्या 1 की ओर से उच्च न्यायालय के आदेश को उचित ठहराने के लिए किसी अन्य बिंदु का आग्रह नहीं किया गया ।

उपरोक्त पृष्ठभूमि में उच्च न्यायालय का निर्णय बचाव योग्य नहीं है और इस खारिज किया जाता है। विशेष न्यायाधीश के समक्ष लंबित मामला अब कानून के अनुसार आगे बढ़ेगा। हम यह स्पष्ट करते हैं कि हमने मामले के गुण-दोष पर कोई राय व्यक्त नहीं की है, जो मुकदमे के दौरान सक्षम न्यायालय के समक्ष आरोप के वास्तविक प्रमाण से संबंधित है।

ऊपर उल्लिखित सीमा तक अपील को स्वीकार किया जाता है।

एसकेएस.

अपील आंशिक रूप से स्वीकार की गई।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक अधिवक्ता नृपेन्द्र सिनसिनवार द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।